Chapter-3

:: तृतीय अध्याय ::

:: परिवेश की दृष्टि से शिवानीजी के उपन्यासों की भाषा ::

:: तृतीय अध्याय ::

:: परिवेश की दृष्टि से शिवानी के उपन्यासों की भाषा ::

3.00 : प्रास्ताविक :

परिवेश को देशकाल या वातावरण भी कहते हैं । उपन्यास का यह अभिलक्षण उसे प्राचीन कथा-साहित्य से अलगाता है । प्राचीन कथा-साहित्य में कई बार इस लक्षण को तो छेद ही उड़ जाता था । कई बार "एकस्मिनकाले " तथा "कोई एक नगर था" से काम चलाया जाता था । जबकि इस आधुनिक कथा-साहित्य में देशकाल या वातावरण के तत्व का महत्व अपरिहार्य है । आंचलिक उपन्यास का तो यह मुख्य तत्व या प्राण तत्व होता है । बहुत से उपन्यास कथा-विन्यास के शिथिल होने पर भी , वातावरण की जीवन्तता के कारण ही अविस्मरणीय हो गये हैं । देशकाल या वातावरण में मुख्यतया दो बातें हैं --- देश अर्थात् स्थान अर्थात् ज्योग्रोफिकल सेटिंग और काल अर्थात् समय । उपन्यास यथार्थधर्मी विधा है , परंतु इस यथार्थ का निर्माण तो देशकाल के निरूपण से होगा । कोई बात जो एक स्थान पर अयथार्थ लगती है , दूसरे

स्थान पर वह यथार्थ लगेगी । "वे दिन " उपन्यास में निर्मल वर्मा ने जिन घटनाओं का वर्णन किया है उनका बहुलांश हमें भारतीय-परिवेश की दृष्टि से यथार्थ प्रतीत नहीं होगा ; परंतु यदि उन्हें महायुद्धोत्तर योरोपीय परिवेश की पृष्ठभूमि में देखा जाय तो हमें वे घटनाएं शत-प्रतिशत यथार्थ प्रतीत होंगी । उसी प्रकार कोई काल-विशेष में जो बात यथार्थ लगती है , दूसरे काल में वह अस्वाभाविक अतएव अयथार्थ भी लग सकती है । तात्पर्य यह कि उपन्यास की यथार्थधर्मिता मुख्यतः परिवेश , यथार्थ परिवेश , के आकलन पर निर्भर है । और परिवेश के यथार्थ-चित्रण में भाषा का महत्व अपरिहार्य सिद्ध हो रहा है ।

3.01 : परिवेश-निर्माण में भाषा का योग :

ऊपर परिवेश के संबंध में बताया गया है कि उसमें मुख्यतया दो घटक होते हैं -- स्थान और समय । "चार कोश पर बानी" के बदलने की बात कही ही गयी है । किसी एक प्रदेश में आम तौर पर एक मानक भाषा का प्रयोग होता है , परंतु वहां भी स्थान के हिसाब से "स्पोकन-लैंग्वेज" -- बोली जानेवाली भाषा -- के कई-कई रूप सामने आते हैं । कई बार तो पासपास के दो गांवों की भाषा में भी अंतर पाया जाता है । बड़ौदा के पास ही दंतेश्वर नामक एक गांव है । अब तो वह बड़ौदा में ही मिल गया है । उस गांव में एक विशेष जाति के लोग आज भी सम्मानसूचकता के अर्थ में व्यक्तियों के नामों के पीछे "होन" शब्द लगाते हैं , जैसे यदि किसी का नाम मोहन हुआ तो वे कहेंगे "मोहनहोन" । ऐसा नहीं कि यह पुरुषों के नामों के पीछे ही लगता हो । स्त्रियों के नामों के पीछे भी लगता है , जैसे किसीका नाम रतन हुआ तो वे कहेंगे "रतनहोन" । मेरे निर्देशक डा. पारूकांत देसाई का गांव है गुताल । वह बड़ौदा जिले के वाघोड़िया तहसील में आया हुआ है । वे बता रहे थे कि उनके गांव में अलग-अलग जातियों की गुजराती भाषा का बोलचाल का रूप अलग-अलग है । भालिया नामक एक जाति के बोल-

चाल ×ढाल के रूप इतने भिन्न हैं कि बाकी लोगों की भाषा से उनकी भाषा या बोली आसानी से पहचानी जा सकती है । बड़ौदा से पावागढ़ जाते हुए बीच में एक गांव आता है -- जरोद । इस गांव ×× के नाम का उच्चारण वे "जरोद्य" करते हैं । उसी प्रकार दादी को "घयड़ी" ‖ घरड़ी /गुज./ ‖ और वडोदरा को "वदरुं" कहते हैं । अभिप्राय यह कि यदि उनके परिवेश पर कोई कहानी या उपन्यास लिखा जाये तो उस परिवेश के यथार्थ निर्माण के लिए उनकी भाषा को प्रयोग में लाना पड़ेगा । रेणु ने "मैला आंचल" उपन्यास में पूर्णिया जिले के मेरीगंज गांव के यथार्थ परिवेश की निर्मिति हेतु जिस भाषा का प्रयोग किया है उसमें लगभग सौ से अधिक भाषागत "टोन्स" को लक्षित किया जा सकता है ।[1]

"देश" या स्थान की भांति "काल" अर्थात् समय का ध्यान भी ×××है× रखा जाता है परिवेश-निर्माण की प्रक्रिया में । और यहां भाषा का एक साधन के रूप में प्रयोग होता है । समय का इतिहास लिखने में शब्दों की भी अपनी एक निश्चित एवं विशिष्ट भूमिका होती है । हमारे तरफ के मजदूर मालगाड़ी को "गुस्टन" कहते हैं । मैंने एक दिन अपने निर्देशक साहब को इस विषय में पूछा कि तो उन्होंने बताया कि यह शब्द " गुड्स ट्रेन" से मुखसुख , सरलीकरण तथा अशिक्षा[2] के कारण व्युत्पन्न हुआ जान पड़ता है । अतः सौ-डेढ़ सौ वर्ष पूर्व की भाषा में इसका प्रयोग कभी नहीं मिल सकता और यदि कोई लेखक अज्ञानतावश ऐसा करता है तो उसे काल-××× विषयक दूषण माना जायेगा ।

3.01 : परिवेश निर्माण में भाषा का योग :

ऊपर निर्दिष्ट किया गया है कि परिवेश में "देश" और "काल" को केन्द्रस्थ रखा जाता है । सरल शब्दों में कहें तो स्थान या प्रदेश और समय को विशेषतः ध्यान में रखा जाता है । अतः जब परिवेश के यथार्थ निर्माण की बात आती है तब अन्य वस्तुमूलक एवं तथ्यमूलक मुद्दों के साथ भाषा का मुद्दा भी अनिवार्यतः जुड़ता है , क्योंकि यह जो कुछ भी

किया जाता है उसका माध्यम तो भाषा ही है । अतः परिवेश-निर्माण में भाषाकर्म की उपादेयता स्वयमेव असंदिग्ध है ।

वातावरण या परिवेश विषयक चर्चा करते हुए बाबू गुलाबराय लिखते हैं —" कुछ स्थान विशेष रूप से वीरता के उद्दीपक हैं तो कुछ भयानक के । घटनाओं के उपस्थित होने पर स्थल का विशेष महत्व रहता है । स्टीविन्सन ने लिखा है कि " कुछ अंधकारमय उपवन हत्या का आवाहन करते प्रतीत होते हैं , कुछ पुराने मकान भूत-प्रेतों के अस्तित्व की मांग करते हैं और कुछ भयानक समुद्रतट जहाजों के टकराने के लिए पहले से ही निर्धारित कर दिए गए हैं । { सर्टेन डार्क गार्डेन्स क्राय एलाउड फोर मर्डर , सर्टेन ओल्ड हाउसिस डीमाण्ड टु बी हान्टेड. सर्टेन कोस्ट्स आर सेट अपार्ट फोर शिप-रेक्स. } " जो वस्तु जहां की उपज नहीं उसका वहां दिखाना अथवा जो प्रथा जिस काल में प्रचलित न थी उसका उस काल में चित्रित करना भारतीय समीक्षा-शास्त्र में क्रमशः देश और काल-विरुद्ध दूषण माने गए हैं । "[3]

ऊपर स्टीविन्सन महोदय के उद्धरण में कहा गया है कि कुछ स्थान विशिष्ट प्रकार के भावों एवं घटनाओं के लिए उद्दीपन का कार्य करते हैं । ठीक उसी तरह हम कह सकते हैं कि उपन्यास की भाषा को पढ़कर ही कहा जा सकता है कि उसका परिवेश क्या होगा । वह समसामयिक है कि ऐतिहासिक , ऐतिहासिक है तो किस काल का , ग्रामीण है कि नगरीय , ग्रामीण है तो किस वर्ग या ज्वार से संबंधित , नगरीय है तो किस नगर से संबंधित ; इसका अभिज्ञान हमें उसकी भाषा से ही होता है ।

"मैला आंचल" की भाषा के सन्दर्भ में उमाशंकर जोशी ने लिखा है —" "मैला आंचल" में बोला जानेवाला शब्द उत्कृष्टता से प्रयोजित हुआ है । श्री रेणु का उपन्यास शिष्ट साहित्यिक भाषा में नहीं लिखा जा सकता , अंतिम दशक की शिष्ट हिन्दी में तो बिलकुल नहीं । कृषक-जीवन की राष्ट्रभाषा जैसा भी कुछ होगा नहीं ? सौरा-

छ्द्र का "भड़कियो" पूर्णिया में "भुरूकुवा" के रूप में दिखाई पड़ता है । लोकभाषा का कैफ [नशा] रेणु को कम नहीं है । तथापि "आंचल उड़ि-उड़ि जाय , " "दूर ही से गरजत मेघ रे मेरो " जैसी पंक्तियां कथापट में बुन देते हैं तब भी " कि उमड़ू कमला माई है । " जैसी कमलानदी को बाढ़ लाकर पति को परदेश जाने से रोकने की प्रार्थना करने के मिस विश्वनाथप्रसाद की पुत्री कमला को डाक्टर के प्रति धंसते हुए बताने का व्यंग्योपक्रम अस्पष्ट रहता नहीं है । ...शब्द को यथातथ्यरूप में लेने हेतु लेखक टेइपरेकर्डर साथ लेकर घूमते हों ऐसा कई बार लगता है ।" [4] यहां मैला आंचल" की भाषा उसके परिवेश को उठाने में पूर्णतया सक्षम प्रतीत होती है ।

औपन्यासिक भाषा परिवेश का निर्माण करती है । अतः न केवल लेखकीय भाषा , प्रत्युत पात्रों के प्रकथनों की भाषा भी उसके अनुरूप ही आती है । यहां औपन्यासिक भाषा को लेखक की शैली और समानता से अलगाना कई बार अत्यंत कठिन हो जाता है । उपन्यास में भाषा उसके समग्र प्रस्तुतीकरण के रूप में आती है । इस संदर्भ में मिखाईल बख्तिन के विचार उल्लेखनीय रहेंगे -- " टू ए ग्रेटर और लेसर एक्सटेण्ट , एवरी नोवेल इज़ ए डायलोगाइज्ड सिस्टम मेड अप आफ इमेजिज आफ 'लैंग्वेज ', स्टाइल्स एण्ड कोन्सियशनेस थेट आर कोंक्रीट एण्ड इनसेपरेबल फ्रोम लैंग्वेज़ . लैंग्वेज़ इन द नोवेल नोट ओन्ली रीप्रेजेण्ट्स , बट इट्सेल्फ सर्वज एज द ओबजेक्ट आफ रीप्रेजेण्टेशन. नोवेलिस्ट डिसकोर्स इज आल्वेज क्रिटिसाइजिंग इट्सेल्फ. " [5]

अभिप्राय यह कि पात्र , प्रसंग , विचार , घटना इत्यादि जो अनेक घटक हैं जिनसे यथातथ्य परिवेश की निर्मिति होती है , उन सबको प्रस्तुत करने का आधार तो भाषा ही है । शिवानीजी के उपन्यासों में भी हम इस तथ्य को रेखांकित कर सकते हैं । "भैरवी" उपन्यास में भैरवानंद नामक एक अघोरी कापालिक के अखाड़े का परिवेश लेखिका ने लिया है , अतः उसके वर्णनों तथा संवादों में उसके उपयुक्त भाषा का

सन्निवेश लेखिका ने किया है । यथा — "तंत्र-मंत्र , कुंडलिनी शक्ति , षट-चक्र , इंगला-पिंगला , सुषुम्ना , सहज-समाधि , प्रत्याहार प्राणायाम , सब कुछ तो उसके सहजिया सिद्ध उसे जाने-अनजाने पढ़ाने लगे थे ।" [6] इसी उप-×××× न्यास की मायादीदी भैरवानंद की भैरवी थी । उसे जब भैरवानंद का नाग डंस लेता है , तब आसन्न मृत्यु-अवस्था में बड़बड़ाते हुए वह जो बोलती है वह भी उसके परिवेश की सूचना देता है । "आनंदस्वरूपिणी , बुद्धिस्वरूपा , शक्ति ही है । आलोक और अन्धकार — वही रात्रि है और वही उषाकाल , वही है मृत्यु और सहस्त्र सुंदरियों के रूप में मुस्काती वही है तारों की छटा , कुमारी का सौन्दर्य और सहचरी का साहचर्य । गुरु , देखना , सब याद है मुझे ? " [7]

"चौदह फेरे" उपन्यास का कर्नल शिवदत्त पांडे मूलतः कुमाऊं प्रदेश का है । अनेक वर्षों के बाद जब वह बिना किसी पूर्व-सूचना के अपने पितरस्थान लौटता है , अपनी युवा पुत्री अहल्या को लेकर , तब ताऊ के द्वारा जो उनका स्वागत होता है उसका एक चित्र देखिए — "कुली सामान लेकर आंगन में पहुंचा ही था कि ददा ने देख लिया । हाथ का अखबार फेंककर वे दौड़कर कर्नल से लिपट गये और वहीं से चिल्लाने लगे : " अरी सुनती हो , अपना शिबिया आ गया है , अरे भई बहू , शंख तो बजाओ । " सोलह वर्ष बाद बचपन ×××× के साथी मिल रहे थे , दोनों की आंखें गीली हो ×× आयीं : "हद कर दी तूने , एक तार तो कर दिया होता , मैंने तो आशा ही छोड़ दी थी , और यह तेरी लड़की है ? वाह-वाह एकदम तेरा नक्शा है , पितृमुखी कन्या सुखी , बड़ी भाग्यवान बेटी होगी हमारी, चलो-चलो , भीतर चलें । " अहल्या ने झुककर ताऊ के पैर छुए और सहमकर उनके पीछे-पीछे चल दी ।" [8]

उपर्युक्त उद्धरण में शिवदत्त को बड़ा आदमी होने पर भी ताऊजी द्वारा "शिबिया" कहा जाता है । उससे कुमाऊं का ग्रामीण परिवेश सजीव हो उठा है । गांवों में शहरों-सी औपचारिकता का

अभाव मिलता है । विवाह के घर में अपना कोई आत्मीय आता है तो शंख बजाया जाता है, यह कुमाऊं प्रदेश की एक प्रथा है । पितृमुखी कन्या भाग्य-वान होती है, यह मान्यता भी लगभग सभी प्रदेशों के ग्रामीण जवारों में प्रचलित है । राजस्थान तथा उत्तरप्रदेश की कुछ जातियों में कन्या अपने मैकेवालों के पैर नहीं छूती है, परंतु कुमाऊं प्रदेश तथा गुजरात में ऐसा नहीं है । कुमाऊं प्रदेश के रिवाज गुजरात के रिवाजों से मिलते हैं यह एक आश्चर्यजनक तथ्य है । इस प्रकार यहां लेखिका ने जिस प्रकार की भाषा का प्रयोग किया है, वह कुमाऊं प्रदेश के परिवेश को तादृश रूप में उपस्थित करता है ।

"कृष्णकली" उपन्यास की कली एक आधुनिक युवती है । वह जिस कंपनी में काम करती है, वहां विदेशों से एक हिप्पी-दल आया हुआ है । लेखिका ने इस प्रसंग का जो वर्णन किया है वह हिप्पियों के परिवेश के सर्वथा अनुकूल है ।" द्वार पर ताला मार कर वह {कली} निरु-द्देश्य भटकने चल पड़ी । आज उसका ऑफ डे था, पर दिन-रात धमा-चौकड़ी मचा, त्रैलोक्य-दर्शन की एक-एक गोली मुख में धरकर अल्पकालीन मृत्यु की निश्चेष्ट करवट में सो जानेवाले अपने भूत-पिशाचों के दल में स्वयं डाकिनी बन सम्मिलित होने वह अचानक असमय ही उनके होटल में पहुंच गयी । पाल ने एक चीख मारकर उसे बांहों में उठा लिया, " हे केली, तुमने अपना पता दिया होता तो हम तुम्हें कब का किडनैप कर ले आये होते । वैलहेम आज एकदम ठीक है । कल डिस्चार्ज हो जायेगा । कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को ही श्मशान-दर्शन का आदेश गुरूजी ने दिया था । बस रविवार को श्मशान में दिन-भर पिकनिक और रात को साधना -- प्युनी --प्युनी माई लव ।"[9]

"कालिन्दी" उपन्यास में डाक्टर कालिन्दी के मामा देवेन्द्र पुलिस के एक बड़े अफ़सर थे, परंतु ऐच्छिक निवृत्ति लेकर अपने कुमाऊं प्रदेश स्थित गांव में आराम से रह रहे हैं । कालिन्दी कुछ छुट्टियां लेकर आयी हुई है । अतः देवेन्द्र मामा अपने परिवार के साथ कुमाऊं

प्रदेश की यात्रा को निकले हुए हैं । उस प्रसंग को लेकर जो विवरण तथा कथोपकथन आये हुए हैं वे कुमाऊं प्रदेश के परिवेश को भलीभांति उभारते हैं —

" "हाय मामा , आपने यहीं बंगला क्यों नहीं बनाया — मुझे तो यह जगह {गरुड़ की घाटी} कौसानी से भी सुंदर लग रही है — जी में आ रहा है नौकरी छोड़-छाड़ , यहीं अपना क्लीनिक खोल लूं । " ... "लो और सुनो दीदी । " शीला ने हंसकर कहा — " अरी तू क्लीनीक खोल भी लेगी तो क्या तुझे यहां मरीज मिलेंगे ? " .... "क्यों नहीं मिलेंगे " कालिन्दी ने खीझे स्वर में पूछा तो देवेन्द्र ने हंसकर कहा — " नहीं मिलेंगे यहां भांजी — यहां भला कोई बीमार पड़ सकता है ? यह दयार-[illegible] बांज की हवा ही तो इनकी दवा है और यह अद्भुत वनखण्ड है इनका क्लीनिक — अभी तेने बैजनाथ नहीं देखा — जब कौसानी में चाय के बगीचे लहलहाते थे तब बैजनाथ था हमारे देवताओं का समर-रिजोर्ट — बस फिर अंग्रेजों की लार टपकी और उसी नोच-खसोट ने , हमारे उन भव्य मंदिरों को खण्डहर बना दिया — बूटधारी सूर्य की विलक्षण मूर्ति , तुझे भारत-भर में और कहीं नहीं मिलेगी । सदानीरा गोमती की क्षीण धारा , शायद इसी देवभूमि से सहम कर कभी हिंसात्मक रूप धारण नहीं कर पाई — किया होता तो ये मंदिर कब के बह गये होते चड़ी — " ... मामा एक छोटे-से भग्न मंदिर के पथरीले आंगन में बैठकर सुस्ता रहे थे , और उनके घुटनों से सटी चड़ी चुपचाप बैठी एक-एक मूर्ति का इतिहास सुन रही थी । ...." इस बैजनाथ का पुराना नाम क्या था , जानती है ? कार्तिकेयपुर — उसीका अपभ्रंश बना कत्यूर — यहां नवीं शताब्दी की प्रतिहारयुगीन मूर्तियां हैं — चल तुझे दिखा दूं " — न जाने कितने छोटे-छोटे मंदिरों की प्रदक्षिणा कर , वह जिस मुख्य मंदिर में पहुंचे उनकी दीवारें ही अब उस प्रस्तर वैभव की साक्षिणी बनी खड़ी थीं ।" [10]

यहां पर कुमाऊं प्रदेश की सुंदरता का जो वर्णन है तथा भाषा

का जो लहजा है, "चड़ी" जैसा शब्द-प्रयोग, जैसे गुजरात के चरोतर प्रदेश में "छोड़ी", आदि से कुमाऊं प्रदेश का परिवेश स्पष्टतः निर्मित हुआ है।

3.02 : नगरीय परिवेश :

"कृष्णकली" जैसे कुछेक उपन्यासों को छोड़कर शिवानीजी के प्रायः सभी उपन्यासों में ग्रामीण एवं नगरीय परिवेश का सम्मिश्रण उपलब्ध होता है। उनके उपन्यासों के मुख्य पात्र शहरी होते हैं, परंतु उनका मूल कुमाऊं प्रदेश में होने के सबब, उनमें ग्रामीण परिवेश का समावेश हो गया है। स्वयं शिवानीजी कुमाऊं की हैं। अतः उनके उपन्यासों में कुमाऊं का आना नितान्त स्वाभाविक होगा। इसके अतिरिक्त वे राजकोट, बैंगलोर, बम्बई (अब मुंबई), दिल्ली, कलकत्ता, लखनऊ, बनारस, अलमोड़ा, नैनिताल जैसे स्थानों पर रह चुकीं या जा चुकी हैं, अतः उनके उपन्यासों में इन-इन शहरों का परिवेश जो मिलता है उसे स्वाभाविक ही कहा जायेगा।

नगरीय परिवेश एवं प्रायः शिक्षित पात्रों के कारण उनकी भाषा भी थोड़ी उच्च-स्तरीय, सुसंस्कृत तथा अंग्रेजी शब्दों से संपृक्त मिलती है। यहां कुछेक उदाहरणों के द्वारा इसे स्पष्ट करने का उपक्रम है।

"कृष्णकली" उपन्यास का प्रवीर कलकत्ते का है। वैसे उसे अपनी नौकरी के सिलसिले में देश-विदेश जाना पड़ता है। परंतु उसका परिवार कलकत्ता में रहता है। उसका एक मित्र है -- घोष। एक बार जब प्रवीर अपनी ससुराल से लौट रहा था तब घोष मिल जाता है। उसकी भाषा में वही कलकत्तिया "टोन" मिलता है, जो वहां के किसी भी बाबू मोशाय में मिल सकता है। यथा -- " की है, श्वशुरबाड़ी थेके बुझी ?" कन्धे पर झूलती चुनी धोती को घोष ने हाथ में उतार लिया, "वैसे ऐसे शुभ कार्य से ते लौटा है, मुझे छूना नहीं चाहिए। अशौच है यार, अभी-अभी रांगा दी की लाश को फूंककर चला आ रहा हूं -- और जानता है वहां कौन मिली ?" ...." तेरी टैनेंट मिस मजूमदार। मार्हरी यार,

गज़ब की है छोकरी । साथ में थे तीन-चार हिप्पी छोकरे और एक छोकरी । घूम-घूमकर जलती चिताएं ऐसे देख रहे थे जैसे कोई प्रदर्शनी चल रही हो या कार्निवाल । मुझे देखा तो सकपका गयी । आयी थी श्मशान में और साड़ी ऐसी पहनी थी जैसे ससुराल आयी हो । लाल बनारसी । एकदम चिता की लाल लपटों से मैच करती साड़ी । और जो हो , शी नोज़ हाऊ टू कैरी हर सेल्फ़ । " 11

"भैरवी" उपन्यास की रुक्मिणी के परिवार की गणना दिल्ली के अल्ट्रामोडर्न समाज में होती है । बहुएं जीन्स और जर्सी में सिगरेट फूंकती हैं । स्वयं रुक्मिणी देर-देर रात गये तक क्लबों में ताश खेलती रहती थी , अतः अपनी बहुओं से कुछ कह भी नहीं सकती थी । उनकी एक बहू जब से विदेश घूम आयी थी और भी धृष्ट हो गई थी । उस परिवार के संबंध में जो विवरण और संवाद आये हैं उनसे उनका महानगरीय उच्चवर्गीय परिवेश स्पष्टतया उभरकर सामने आता है । जैसे --

" कभी-कभी , सास-बहू में कोल्ड वार चलती तो छोटा पुत्र विक्रम भाभी का ही पक्ष लेता । " तू क्यों नहीं कहता कुछ उस बेशरम से ? " रुक्मिणी ने एक दिन विक्रम को फटकारकर कहा था , " तेरे डैडी के सामने , जीन्स पहने घूमती है बेहया । " .... " तो क्या हो गया मम्मी , नंगी तो नहीं घूमती , मैं तो सोचता हूं , जीन्स हिन्दुस्तानी बहुओं की नेशनल ड्रेस बना दी जानी चाहिए । कम से कम टखनियां तो ढंकी रहती हैं । फिर मम्मी , जब तुम्हारी सोनिया, जीन्स पहनकर डैडी के सामने घूम सकती है , तब भला भाभी क्यों नहीं घूम सकतीं ? " " 12

वही रुक्मिणी अपने बेटे विक्रम के लिए जब चंदन का हाथ मांगने राजेश्वरी के पास जाती है , तब उसकी बातों में वही उच्चवर्गीय परिवेश का अभिमान झलकता है — " वैसे दिल्ली में हमारे समाज की एक से एक सुंदर और पढ़ी-लिखी लड़कियां हैं । " फिर वह स्वयं घबराकर कहने लगी , " आप कहीं यह मत ~~[illegible]~~ सोचियेगा कि मैं आपको

`इम्प्रेस ` करने की चेष्टा कर रही हूं , पर ईश्वर की कृपा से लोनिया के पिता का व्यवसाय अच्छा-खासा है , यह कुछ तो लक्ष्मी की कृपा-दृष्टि का फल है और कुछ स्वयं उनकी साधना का । बड़ा लड़का बर्मा-शेल में है । छोटा विक्रम , जो आपके यहां पन्द्रह दिन पूर्व अतिथि बन आया था , अब जामाता बनना चाहता है । " यहां पर , पल-भर रुककर वह व्यवहारकुशल महिला अपनी भुवनमोहिनी स्मिति से कथन को संवारना नहीं भूली । " वह `महेन्द्रा एण्ड महेन्द्रा` में काफी तगड़ी तनख्वाह ले रहा है । मैं तो अचरज में डूब गई थी कि मेरे जिस नाक-भौं चढ़ाने वाले बेटे को आज तक एक भी लड़की पसंद नहीं आई , वह एक ही रात में आखिर किस उर्वशी पर रीझ गया ? पर आज जब खुद देखा , तब अब न कोई जिज्ञासा रही न कूतूहल । "[13]

"मायिक" उपन्यास की नलिनी मिश्रा एक सुरुचि संपन्न अध्यापिका है । वह निवृत्त जीवन बीता रही है । कानपुर के पास एक छोटे-से शहर में उसने अपनी भव्य कोठी बना रखी थी । कोठी को देखकर कोई उसके बनानेवाले के टेस्ट को सहज ही में ताड़ सकता है । दीना बाटलीवाला एक बहुवेशधारी ठगिनी है । वह नलिनी मिश्रा जैसी प्रौढ़ एवं परिपक्व महिला को भी प्रभावित कर देती है । नलिनी और दीना की जो भाषा है उससे उसके उच्च नगरीय परिवेश का सहज ही परिचय मिल जाता है ।

" "क्षमा कीजियेगा , मैं ऐसे आपके यहां बिना किसी पूर्व-सूचना के ही चली आई । अपना परिचय दे दूं । मेरा नाम है — दीना बाटलीवाला । अभी दो दिन पहले बम्बई से आई हूं । बसन्से कानपुर जा रही थी । यह शहर कुछ ऐसा मोहक लगा कि यहीं उतर गई । एक होटल में टिकी हूं । आज घूमते-घूमते इधर भटक गई । आपकी यह कोठी दिखी तो सोचा , शायद लोधी वंश के किसी सम्राट का स्मारक है । " बहुत दिनों बाद नलिनी ठठाकर हंसी थी , " खूब पहचाना आपने राजस्थानी खानों के इन लाल-सफेद पत्थरों को । मैंने यही

सोचकर तो मंगाया था । चलिए , इसी बहाने आपसे इस मकबरे के माध्यम से परिचय तो हो गया । " .... " बात यह है जी , कि मैं भी कभी आर्किटेक्ट थी , " उसने एक लंबी सांस खींचकर कहा , "अब बम्बई में इंटीरियर डेकोरेटर हूं । फिल्मी तारिकाओं की आवास-सज्जा से छुट्टी पाती हूं तो ऐसे ही मंदिर-मकबरों की धूल फांकती नये-नये आइडिया बटोरती फिरती हूं । " .... " सच कहती हूं , " दीना बाटलीवाला ने चाय की चुस्की लेकर कहा , " मैंने आज तक पिंकी सैंडस्टोन और मार्बल की ऐसी अद्भुत मिलावट नहीं देखी । क्या मैं पूछने की धृष्टता कर सकती हूं कि आपका आर्किटेक्ट कौन था ? " .... " कौन कहता है आप बूढ़ी हैं । आई बेट , यू आर इन युअर थर्टीज़ । ..... " नहीं बहन , थर्टीज़ में कोई रिटायर नहीं होता । .... " सच कहती हूं " , दीना बाटलीवाला अपने कटे केशगुच्छ की एक सुकोमल भीगी लट को अपनी गोरी चम्पकवर्णी अंत-राल अंगुली से हटाकर मुस्कराई , " जैसे तैमूर भारत के अद्भुत कारीगरों को बंदी बनाकर समरकंद ले गया था , मेरे जी में आ रहा है , आपको भी बंदिनी बनाकर बंबई ले चलूं । यू आर ए जीनियस । "" [14]

यहां पर दीना बाटलीवाला के लिए लेखिका ने जिस भाषा का प्रयोग किया है , वह नगरीय परिवेश के किसी सुशिक्षित तथा बहुश्रुत व्यक्ति की भाषा ही हो सकती है ।

3.03 : ग्रामीण परिवेश और भाषा :

जिस प्रकार नगरीय परिवेश की भाषा में भाषा की शुद्धता और उच्च-स्तरीयता का ध्यान रखा जाता है ; उसी प्रकार ग्रामीण परिवेश की भाषा में भाषा के बोली के रूप , अशुद्धता , ग्रामीण क्षेत्रों में प्रयुक्त होनेवाली कहावतें और मुहावरों के प्रयोग इत्यादि का ध्यान रखा जाता है । यद्यपि नगरीय परिवेश में भी यदि परिवेश निम्नवर्गीय लोगों का हो , झोंपड़पट्टी का हो तो भाषा का स्वरूप शुद्ध व उच्च-स्तरीय न रहेगा । ठीक उसी प्रकार ग्रामीण परिवेश में भी

यदि चरित्र उच्चवर्गीय , शिक्षित एवं संस्कारी होगा तो उसकी भाषा का स्तर ग्रामीण परिवेश के अनुरूप नहीं होगा ।

"चौदह फेरे" उपन्यास में अधिकांशतः तो नगरीय परिवेश आया है , परंतु कर्नल शिवदत्त पांडे की पत्नी गांव की है । वह अशिक्षित , गंवार एवं फूहड़ टाईप की औरत है । अतः कर्नल ने उसे छोड़ रखा है । यहां कर्नल की पत्नी नन्दी तथा उसकी भाभी सावित्री के संवाद दिये जा रहे हैं । नन्दी की भाभी कर्कशा एवं मुंहफट किस्म की औरत है । अतः भाषा से ही ज्ञात हो जाता है कि यहां ग्रामीण परिवेश का चित्रण हुआ है ।

सावित्री कहती है — "सांड़ जैसी खबीस अपने बीबी-बच्चों की भी सुध न ले , तो थूड़ी है साले पर " , सुना-सुनाकर वह कहती— "यहां कौन-सी आमदनी है ... ऐसे दलिद्दरों के पल्ले बांध दिया , मेरे मायके में मरी बीस-बीस भैंसें बंधी थीं । " नन्दी भी नहले पर दहला थी : " किसे सुना रही हो भाभी , वह दिन भूल गई जब तुम्हारे भैया को बाबूजी ने गरम कोट सिलवा दिया था । ठण्ड के मारे थर-थर कांपते इसी दरवाजे पर तुम्हें लिवाने लुरबुरिया से खड़े हो गये थे । ऐसी बीस-बीस भैंसे बांधने वाले हमने बहुत देखे हैं । " कर्कशा सावित्री की क्रोधाग्नि में मानो घी की धारा पड़ गयी । एक ही धोती पहनकर वह चौके से बाहर निकल आती : " कोई-न-कोई बात तो हुई ही होगी *भ्रे , जो खसम ने दूध की मक्खी-सा फेंक दिया । ऐसी ही शरम थी , तो भाई की छाती पर मूंग दलने क्यों आ गयी । खोने को तो ढाई सेर खाती हो , सवा सेर दूध तो तुम्हारी बिन्टिया पीवै है । उस पर नखरे देखो मुई के । हाय भैया मुझे लवंगादिचूर्ण ला दो , च्यवनप्राश ला दो , बड़ी कमजोरी हो गई है । हमें लूटकर मुटा रही हो । बीबो , क्यों भाई-भाभी का धुआं देखती हो । " [15]

यहां जो भाषा प्रयुक्त हुई है वह ग्रामीण परिवेश के अनुरूप

है । "सांड़" , "खबीस" , " थुड़ी" , ३दलिद्दर दलिद्दर" , "लुर-बुरिया" , "खसम" , "मुई" जैसे शब्द-प्रयोग तथा दूधकी मक्खी-सा निकाल फेंकना , छाती पर मूंग दलना , दूसरे का धुआं देखना जैसे मुहावरों से इसका ग्रामीण परिवेश स्वयमेव स्पष्ट हो जाता है ।

"कालिन्दी" उपन्यास की कालिन्दी यों तो दिल्ली में डाक्टर है , परंतु छुट्टियां लेकर वह प्रायः अपने मामा के यहां अल्मोड़ा जाती रहती है । एक बार वह अल्मोड़ा से दिल्ली जा रही थी तो बस में एक वाचाल बुढ़िया मिल जाती है । वह ग्रामीण परिवेश की है । उसकी भाषा में कुमाऊं के ग्रामीण अंचल की परिवेशता पूर्णरूपेण छलकती है ।

" उस बुढ़िया ने बड़े स्नेह से उसकी पीठ पर हाथ धरा -- "के चेली , सौरास जाणो छी ? " ‡क्यों बेटी , ससुराल जा रही हो क्या ? ‡ .... " आहा रे किसका घर उजाला किया है तूने -- चेली । मरद सरकारी नौकरी में है क्या ? " .... तब ही तो मैं कहूं , किसी अफसर की घरवाली है यह , इतना सोना पहने हैं , क्यों री , चार तोले की तो होगी ... यहां के सुनार की गढ़ी तो है नहीं , देसी सुनार की बनाई हैं ना ? .... "तभी तो कहूं , हमारे तो ये पहाड़ी सुनार , बस एक पहुंची ही बनाना जानते हैं , चाहे चूहादंती बनवा लो चाहे मटरदंती । " ..... " मेरे ससुर ने लैंसडौन से बनवाई थी , पूरे दस तोले की है । रामनौमी भी थी सात तोले की , पर बहू को चढ़ावे में दी थी कि फिर वापिस ले लूंगी , पर चतुर चौगरखियों की जनी मेरी वह बहू , मेरे ही कान काट ले गई -- लौटाना तो दूर , मेरे पिटार में धरे झुमके भी कानों में लटका , बेशरम खीसे निपोड़ खड़ी पूछने लगी -- देखो इजा , कैसी लग रही हूं मैं । ... क्यों चेली कैसा है तेरा मरद ? तेरा ही-सा गोरा उजला है या सांवला ? इस दुनिया में अच्छी जोड़ियां देखने को ही कब मिलती हैं -- अब मुझे ही देख -- अब तो इस असौज में सत्तर पूरे कर लूंगी ,

जब ब्याह हुआ तो चौदह की थी — ऐसा रंग था कि छूने से भी मैला होता था — नाक तो अभी भी देख ही रही है । मेरी बिदा हुई तो इजा मेरे ससुर के सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गई थी — एक ही बिनती है समधी ज्यू , बड़ी बान {रूपसी} है मेरी परु , इसकी डोली किसी पेड़ के नीचे मत "[illegible]" `बिसाने ` {विश्राम करने} देना , छल {भूत} चिपट जाएगा और मेरा दूल्हा ? .... सेब के बगीचों में जैसा पुराना कोट-टोप-पैंट खबीस खड़ा करते हैं ना पहाड़ में ? एकदम ठीक वैसा ही, इस पर तुतलाता ऐसे था जैसे दो साल का बच्चा हो — ल और र को कहता था ग — " पगु-पगु चग डुनखुट्टी खेगें " .... " मैं समझ गई , मैंने कहा — पगु , फूट गए तेरे भाग । पर दिल का बड़ा नेक है चेली , मुझे बहुत प्यार करता है , सास कंकाला थी , मुझसे लड़ती तो वह मेरा [illegible] ही पच्छ लेकर , मुझे बचा लेता , एक से एक गहने गढ़वा दिए थे उसने । मैंने भी अपना पूरा करज मय सूद-ब्याज के उतार दिया , उसे पूरे सात बेटों का बाप बनाकर — चाहे अब दो ही बचे हैं , नरैण और सदानंद — के हो डराइभर ज्यू — गरम पानी कब आयेगा ? " फिर पिलंगट-सा फटक उसने प्रसंग बदल दिया ।"[16]

उपर्युक्त अवतरण में "चेली" , "सौरास" , "मरद " , "चूहा-दंती" , "मटरदंती" , "असौज" , "समधी ज्यू" , "बड़ी बान" , "पच्छ" , "नरैण" , "डराइभर ज्यू" जैसे शब्दों से कुमाऊं प्रदेश का ग्रामीण परिवेश हूबहू उतर आया है ।

3.04 : पहाड़ी परिवेश और भाषा :

शिवानीजी मूलतः कुमाऊं प्रदेश की हैं , और उनके जीवन का एक बहुत बड़ा हिस्सा उससे जुड़ा हुआ है । अतः अपने उपन्यासों में उन्होंने उस प्रदेश के परिवेश का यथार्थ चित्रण किया है । इस चित्रण में उनकी भाषा कल्पना और स्मृति ने भी उनका अच्छा साथ दिया है । गुजरात के "चरो-तार" में जैसे बड़े-बुजुर्ग लड़कियों को "छोड़ी" कहते हैं , उसी प्रकार कुमाऊं में उसे "चेली" कहा जाता है ।[17] कई बार सम्बोधन के पूर्व "अरे भाई "

या "हे भाई " , " हे मांजी" , "ऐ मिस्टर" जैसे प्रयोग किये जाते हैं ; ठीक उसी प्रकार कुमाऊं प्रदेश में " के हो " का लहजा चलता है , जैसे "के हो डराइवर ज्यू" या " के हो समधी ज्यू" । शिवानीजी ने इस लहजे का कई बार प्रयोग किया है । "कालिन्दी" उपन्यास की ऊपर निर्दिष्ट बुढ़िया ही एक स्थान पर कहती है -- "के हो डराइभर ज्यू" गरम परनी कब आयेगा ? "[18] यहां "डराइभर" ड्राईवर के लिए आया हुआ है । गुजरात के ग्रामीण प्रदेशों में कई बार बूढ़ी औरतें अपने पतियों के लिए "डोहा" शब्द का प्रयोग करती हैं । बेटे भी अपने पिता के लिए "डोहा" शब्द का प्रयोग करते हैं , जैसे -- " डोहा हमणांज खेतरे ज्या " , अर्थात् मेरे पिता अभी-अभी खेतमें गये । "कालिन्दी" उपन्यास की वह बुढ़िया अपने पति के लिए "बुड़ज्यू" शब्द का प्रयोग करती है , क्योंकि वहां पहाड़ी परिवेश में महिलाएं प्रायः इस शब्द का प्रयोग बड़े-बूढ़ों के लिए करते हैं ।

इसी प्रकार आमा , इजा , भेल §नितम्ब§ , चड़ी §चिड़िया§ , बिसाना § विश्राम करना§ , छल §प्रेत§ , रत्याली §रतजगा§ , बन्ने-घोड़ियां § शादी के गीत§ जैसे शब्दों के प्रयोग से कुमाऊं का पहाड़ी परिवेश स्वतः उभरता चला है । कहीं-कहीं परिवेश को अधिक यथार्थता रंग देने हेतु कुमाऊंनी बोली के पूरे-के-पूरे वाक्य भी दिए गए हैं । जैसे -- "के चेली , सौरास जाणी छी ? §क्यों बेटी , ससुराल जा रही हो क्या ?§, "वाह आमा , लाखे की बात के गोछा हो " § वाह दादी , लाख की बात कह गई हो § ; "पांच सौ , पांच सौ , फिल्मी वाल ऐरई § पांच रुपए मिले हैं , फिल्म वाले आए हैं § ; " हां आमा , ज्यौंला छन " § हां मांजी , जुड़वां हैं § ; " नाश है जाल तुमर छवारो , बाघ वही जा तुमन , ला नोट ला " § तुम्हारा नाश हो छोकरो , तुम्हें बाघ ले जाए - लाओ नोट इधर दो §[19] ।

इसी प्रकार गोपुली , खिमुली , भिमुली , जैंता , रमुली , नारैण , शिबिया , सदिया , भीमसिंह , गजेसिंह जैसे नाम तथा पन्त ,

तिवाड़ी , नेगी , बिष्ट , भट्ट , पांडे , डौंगरी , खसिया जैसी जातियों और सरनेम्स के कारण भी कुमाऊं-परिवेश प्रथम दृष्टया चिन्हित होता है ।

ठीक उसी प्रकार चीड़ , देवदार , बांज , बुरुंश , भोज , बेल , खरसू , पाम , शाल आदि वृक्ष ; [20] तथा नंदादेवी , त्रिशूल , कामेत , चौखम्भा , दूनगिरि , बंदरपूंछ , स्वर्गारोहण , सतोपंथ , गंगोत्री , यमनोत्री, काठा प्रभृति शिखर ; [21] कौसानी , नैनिताल , टेहरी गढ़वाल , जोशी-पुरा , अल्मोड़ा , नैनिताल , जागनाथ , चितई , गंग बोल्लनाथ , सिटौली , बल्टौली , कर्क एण्ड टैम्पेल , ब्राइटन कोर्नर , गरूड़ , बैजनाथ जैसे स्थानों के वर्णन से भी पहाड़ी-परिवेश का चप्पा-चप्पा उजागर होता है ।

उसी प्रकार पहाड़ी , विशेषतः कुमाऊं , के लोकगीतों के स्पर्श से भी यह परिवेश जीवन्त बन पड़ा है । कालिन्दी , चौदह फेरे , कैंजा (यह "कैंजा" शब्द ही पहाड़ी परिवेश की महमक्षम×है×) पहचान है , यहां सौतेली मां को कैंजा कहा जाता है ।) , शमशानचम्पा , भैरवी , तर्पण , मायिक जैसे कई उपन्यासों में ऐसे लोकगीतों का प्रयोग किया है । जैसे रेणु ने "मैला आंचल" में बिहार के पूर्णिया जिले के लोक-गीतों के द्वारा उसके वातावरण को स्थापित किया है ; ठीक वैसे ही यहां शिवानीजी ने कुमाऊं प्रदेश के लोकगीतों के द्वारा उसकी मिट्टी की महक को पाठक की स्मृति-नथुनों के लिए निष्पन्न किया है ।

कुमाऊं प्रदेश में देवी-देवताओं की जागर गाने की एक प्रथा है । देवी-देवता का डंगरिया (ओझा) जब इन जागर-बोलों को सुनता है , तब उसमें उस देवी-देवता का अवतरण होता है । कालिन्दी उपन्यास में ऐसे ही एक भवानी भगत की बात आती है , जो गोरिल देवता का जागर गाता है —

" मैं छयूं मेरा दामी निंदरा भुल्यूं
अरो मेरा दामी , मैं छयूं सेयूं

झलक्या रया बिस्तर
घुंघराल्या चारपाई
अरे मेरा दामी
ढोल की दमदम , नगाड़ों की गूंज
मैं अयूं गाड़न बगी तेरी पंदर पचीसी
अरे मेरा दामी तू मैके
फूल-सा खिलै दे
भौंरू-सा उड़े दे — • 22

§ हे मेरे दामी / दमामा बजानेवाले / मैं तो नींद में डूबा था और झिलमिलाते बिस्तर तथा घुंघरू वाली चारपाई पर सोया था , तूने [illegible] ढोल की धमक और नगाड़े की गूंज से मुझे बुलाया , मैं नदियों से बहता, पहाड़ों से लुढ़कता यहां आया हूं , तू मुझे बाजे बजा-बजाकर , फूल-सा खिला दे , और भौंरे-सा उड़ा दे । §

पहाड़ों में जब कन्या बिदा होती है तो जो अंतिम गीत गाया जाता है , उसे "जुहरा गीत" कहते हैं । "कालिन्दी" उपन्यास में जब सरोज नामक एक कन्या को बिदा किया जाता है , तब उसकी इजा वही गीत गाती है —

• कोयेऊ जुहरा हारि आयो
कोयेऊ जुहरा जीति लायो
जनक जुहरा हारि आयो
दशरथ जुहरा जीति लायो । • 23

§ कोई जुआ जीत आया है और कोई हार आया है । जनक जुआ हार गये हैं और दशरथ जुआ जीत गये हैं । §

पहाड़ों की तो धरती ही कवि होती है । कोई घटना घटी नहीं कि उसका गीत तैयार । पहाड़ों में किशोर और युवक ऐसे जोड़ [illegible] बनाते ही रहते हैं । गांधीजी के प्रभाव में बना यह गीत देखिये —

"बंण गांधी सिपाही
रहटा कातुंला
देश का लीजिया
हम मरी मेटुंला । " 24

अर्थात् हम गांधी के सिपाही बन सूत कातेंगे और देश के लिए हम मर मिटेंगे ।

इसी प्रकार इन गीतों में कभी अत्याचारी राजाओं की फरियाद भी होती है । कत्यूर की घाटी का राजा भी ऐसा ही एक आततायी था । कत्यूरी का राजा बीरदेव मीलों दूर हथछिना का पानी मंगवाने के लिए अपनी प्रजा की लंबी कतार घण्टों खड़ी कर , हाथोंहाथ पानी मंगवाता था । आज भी उन अत्याचारी निरंकुश राजाओं के अत्याचार की गाथाएं कुमाऊं प्रदेश में गायी जाती हैं । यथा --

"हंकारो तुम्हारो बाबा
जिन उंच्या गढ़ नीचा बनाया
हंकारो तुम्हारो बाबा
सुल्टी नाली लै ल्हिछा
उल्टी नाली लै दिछा
तरुणी तिरिया रूप नी दीना
वरुणी बाकरी ज्यूण नी दीना
महाराजन के राजा
पेड़ पर फल , हूंण नी दीना । " 25

अर्थात् हंकारो हो बाबा , जिन्होंने ऊंचे गढ़ों को नीचा बना दिया , सीधी नाली (अनाज मापने का पात्र) से अनाज उधाते हो , उल्टी से हमें देते हो -- तुम्हारे राज्य में तरुणी तिरिया और वरुणी बकरी रह ही कहां पाती है ? हे महाराजों के राजा -- पेड़ पर फल-फूल भी तो तुम नहीं रहने देते । तुम्हारा हंकारा हो ।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह भलीभांति निष्पादित होता है कि शिवानीजी ने अपने मादरे-वतन कुमाऊँ प्रदेश के पहाड़ी परिवेश को चित्रित करने के लिए उसके अनुरूप भाषा का प्रयोग करने में कोई कसर नहीं उठा रखी है ।

3.05 : हिन्दू परिवेश :

भौगोलिक स्थानों और विभिन्न कालों की भांति धर्म या मज़हब का भी अपना एक विशिष्ट परिवेश होता है । जो व्यक्ति हिन्दू होगा उसके मुंह से अमुक प्रकार के शब्द अनायास ही निःसृत होंगे , उसी प्रकार ईसाई या मुसलमान के मुंह से भी उसके धर्म या मज़हब से जुड़े कुछ शब्द अनायास निकल सकते हैं । प्रायः कवि-सम्मेलनों तथा मुशायरों में देखा गया है कि मुसलमान शायर काव्य-पाठ के लिए आयेगा तो "इस शेर पर आपकी तवज्जो चाहूंगा " ऐसा कहेगा तो हिन्दू कवि के मुंह से निकलेगा — " इन पंक्तियों पर आपके आशीर्वाद चाहूंगा । " इस सन्दर्भ में एक मजेदार लतीफ़ा प्रसिद्ध है । एक बार एक गरीब मुसलमान खाने के लालच में ब्राह्मणों की एक पंगत में बैठ गया । पासवाले व्यक्ति ने पृच्छा की कि वह कौन जाति का है । उसने उत्तर दिया — ब्राह्मण । फिर उसने पूछा — कौन से ब्राह्मण ? उसके पास में कोई "गौर" ब्राह्मण रहता होगा , तो उसने चट से बता दिया — गौर ! इस पर उस व्यक्ति ने कुछ और पूछना चाहा , तब उस मुसलमान व्यक्ति के मुंह से अचानक निकल गया — " या अल्लाह ! गौरों में भी और ! " और इस बात पर उसकी चोरी पकड़ी गई ।

अभिप्राय यह कि प्रत्येक धर्म या मज़हब का भी अपना एक विशिष्ट परिवेश होता है । चाहे कैसा भी हिन्दू हो , उसके मुंह से राम या " जयश्रीकृष्ण " या " हे भोलेनाथ " जैसे शब्द अनायास ही फूट पड़ेंगे ; उसी प्रकार मुसलमान के मुंह से "या अल्लाह " या "इंशा-अल्लाह" या "सुभानल्लाह" जैसे जुम्ले फितरतियान निकलते रहेंगे ।

"कालिन्दी" उपन्यास की अन्ना ‖ अन्नपूर्णा ‖ पंडित रुद्रदत्त भट्ट की सुपुत्री है । पं० रुद्रदत्त कुमाऊं के माने हुए ज्योतिषी हैं । अन्ना की कुंडली में कुछ ऐसे योग थे , सप्तम स्थान स्थित निर्बली ग्रह पर किसी भी शुभ-ग्रह की दृष्टि नहीं थी । ऐसे योगज ग्रह की स्त्री को परित्यक्ता की पीड़ा से गुजरना ही पड़ता है । अतः विवाह के उपरांत कुछ दिन श्वसुर-गृह में रहकर अन्ना पिता के पास आ गई थी । पंडितजी उसे अपनी विद्या सीखा रहे थे । इस संदर्भ में जो विवरण आया है , उसकी भाषा से ही स्पष्ट हो जाता है कि यह किसी हिन्दू ब्राह्मण परिवार के परिवेश से सम्बद्ध है —

" दादी के लाख मना करने पर भी पंडितजी ने दूसरे ही दिन उसके हाथ में खड़िया-पाटी थमा दी , धीरे-धीरे उसनें नवीन जीवन के उलझे धागे स्वयं सुलझा दिए — विवाह के पूर्व ही वह पिता के साथ काशी जाकर मध्यमा की परीक्षा दे आई थी , अब उसने साधिकार पिता के सचिव का कार्य सम्हाल लिया — दादी बड़बड़ाती रहतीं — एक तो लड़की का ही भाग्य खराब है उस पर बाप रही-सही कसर पूरी कर रहा है । अरे क्या बनायेगा इसे पुरोहित ? आज तक किसी स्त्री को पौरोहित्य करते सुना है ? ...... पर अन्ना तो अपनी समवयसिनी लड़कियों के मानसिक स्तर से बहुत ऊपर उठ चुकी थी , सहृदय पिता ने उसे बांहों में उछाल विपुल व्योम में त्रिशंकु-सा लटका दिया था , जहां की निःसीम शून्यता में दिन-रात विचरण करती , वह अनन्त तारिकाओं में गमनशील स्वभाव की रहस्यमयी भाषा पढ़ने लगी थी — सूर्यादि ग्रहों के स्वभाव , विकार , वर्ण , प्रभाव , उनके ऊर्ध्वगामी तोरण-दण्ड , वक्र-अनुवक्र ग्रहों का नक्षत्रों के साथ समागमन , सप्तर्षियों का संचार उसे क्रमशः बटलोही में भदकती दाल चलाने से कहीं अधिक रोचक लगने लगा था । पिता उसे आढ़क , द्रोण , कुडव नाडिका , पारकाष्ठा , कला एवं ऋतु की परिभाषाएं समझाते और वह अपनी विलक्षण स्मृति के सहारे दूसरे ही दिन बालशुक की तत्परता से रट कर पिता को सुना देती तो वे गद्‌गद होकर कहते — " मैं जानता

था अन्ना , तेरा समराशिगत लग्न , गुरु और शुक्र तुझे ऐसा ही ऐश्वर्य-संपन्न बनायेंगे — तू एक दिन वेदांत शास्त्रज्ञा बनेगी बेटी । "[26]

MEHTA LIBRARY University

ठीक इसी प्रकार "श्मशानचम्पा" का निम्नलिखित वर्णन भी उसके हिन्दू-परिवेश की गवाही देता है — " वास्तव में धरणीधर की दर्शनीय अट्टालिका की दिव्य छटा इहलौकिक नहीं लगती थी । लगता था , उसकी सृष्टि केवल व्यावहारिक प्रयोजन के लिए नहीं की गई है । एक सोपान पर पग धरते ही निर्माण-कर्ताओं का स्थापत्य-चातुर्य , सूक्ष्म सौन्दर्य-बोध आंखों को बांध लेता था । दूर से देखने पर `धरणी-भवन ` एक विशाल नेपाली मंदिर-सा ही लगता था । ... कलात्मक गढ़न के चैत्यगवाक्ष , अनेक द्वारों की भित्ति , स्तम्भों में उत्कीर्ण मूर्ति-यों की छटा वास्तव में दर्शनीय थी । प्रत्येक कलाकृति में एक प्रकार की ऐतिहासिक सूक्ष्म प्रतीकात्मकता और सांकेतिकता पारखी आंखों को बरबस बांध लेती थी । एक कोने में धरणीधर के किसी अरण्यपाल मित्र की कृपा से उपलब्ध , एक वृत्ताकार पथरीले आसन पर खड़ी एक भग्न मूर्ति देखनेवालों को सबसे पहले आकर्षित करती थी । उस नारी-मूर्ति का मुख-मंडल शांत एवं गंभीर था । उसके दक्षिण हस्त में श्रृंगार और वाम हस्त में एक खंडित मंजूषा थी । उसके उन्नत वक्ष एवं सुडौल पृष्ठ भाग को पीछे धरे टेबल लैंप का धूमिल प्रकाश बड़े कौशल से छन-छन कर आलोकित कर उठता था । "[27]

उक्त परिच्छेद में जिन प्रकार के शब्दों का प्रयोग हुआ है , उससे उसका हिन्दू-परिवेश स्पष्टतया परिलक्षित होता है । ऐसे ही "कृष्णकली" उपन्यास का निम्नलिखित परिच्छेद भी उसके हिन्दू-परिवेश के साक्ष्य को पूर्णरूपेण प्रमाणित कर रहा है —

"दक्षिणाभिमुख हो उसने एक अंजलि भरकर मुक्तिदायी पावन अमृत जल उठा लिया । पर क्या कहकर छोड़ेगा वह यह जल ? न उसका कुल था न गोत्र , हिन्दूशास्त्र तो उस पार जानेवाले यात्री से भी कुल-गोत्र का वीसा मांगता है । तब क्या यह जल उस अनामा कुल गोत्र

की प्रेतयोनि तक नहीं पहुँचेगा । एक पल को उसे लगा — जन्म-जन्मान्तर के तृषार्त दो सूखे अधर उसकी जलभरी अंजलि से सट गये हैं । ललाट पर वैष्णवी त्रिपुण्ड , गले में तुलसी की माला , अर्धनग्न पीठ पर फैले काले केश । संगमतट की ~~xxxxx~~ प्यासी आदर्शी वैष्णवी उसके पास फिर आकर क्या खड़ी हो गयी थी ? .... प्रवीर ने आँखें बन्द कर लीं , ओठ स्वयं ही बुदबुदाने लगे ।

एकाग्रः प्रयतो भूत्वा , इमं मन्त्रमुदीरयेत् ।
ओं नमो भगवते वासुदेवाय ।।
अवशेषनापि यन्नाग्नि कीर्तिते सर्वपातकैः ।
पुमान् विमुच्य ते सद्यः सिंहत्रस्तैर्मृगैरिव ।।

विवशता से फैली हथेली में मुंदा जल , झरझराकर फिर संगम के नीलाभ जल में एकाकार हो गया । " 28

3.06 : मुस्लिम परिवेश :

तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो हिन्दू-परिवेश की तुलना में मुस्लिम परिवेश बहुत कम पाया जाता है शिवानीजी के साहित्य में । जिस प्रकार के परिवेश में वे पली-बढ़ी हैं , वहां वैसे भी मुस्लिम-संपर्क की गुंजायश कम ही रहती है ; फिर भी "कृष्णकली" , "श्मशानचम्पा", "कैंजा" , "गैंडा " जैसे कुछ उपन्यासों में जहां-जहां कोई मुस्लिम पात्र आया है , वहां उसकी भाषा में मुस्लिम-परिवेश को लक्षित करने वाले शब्द पाये जाते हैं ।

"कृष्णकली" उपन्यास में असदुल्लाखान नामक एक पठान का जिक्र आता है । वह भी डा. पैट्रिक के कुष्ठाश्रम का एक मरीज़ था । उसके चित्रण में तथा इसके कथोपकथनों में लेखिका ने जिस भाषा का प्रयोग किया है उसमें मुस्लिम-परिवेश की झलक प्रकट होती है । " फटी सलवार और जर्जर नीली क्रेप की कमीज़ पहने वह डा. पैट्रिक के सामने एक सलाम दागकर खड़ा हो गया था । .... कीमा बनी दोनों अंगुलियों को देख-

कर डाक्टर सिंह उठीं और अपनी झुंझलाहट नहीं रोक पायी थीं , "आज तक क्या करते रहे तुम ? " .... " पत्थर की खान से खच्चरों पर पत्थर लादता रहा मेम सा'ब । " .... " आज मैंने एक बढ़िया पिक्चर देखी पर्वती । उसमें काम करनेवाली छोकरी एकदम तेरी सूरत की है , " पार्वती को वह पर्वती कहकर बुलाता था । .... " क्यों असदुल्ला खान के पास पैसों की क्या कमी ? राजा घर मोत्यूं अकाल ? " " अभी तो तीन ही खच्चर बेचे हैं , पचास खच्चर चचा जान को सौंप आया हूं , अगले हफ्ते तुझे तीन तोले की मछलियां नहीं बनवा दीं तो मेरा नाम बदल देना । समझी ? " "[29]

"श्मशान चम्पा" उपन्यास की जुही एक मुस्लिम से विवाह करती है । विवाह के पूर्व एक स्थान पर वह अपनी मां को छेड़ने के लिए कहती है -- " नाम है मसूद अली । वाह , वाह , अब की ईद में समधियाने की सेंवई खायेंगे हमारे पुरोहितजी । और अब तुम्हारी कथा-वथा नहीं कराएंगे , समझीं मम्मी !। अब तो मौलूद कराएंगे लोकमणि पंत । " [30] यहां जुही के कथन में मुस्लिम परिवेश का थोड़ा संकेत मिलता है ।

इसी उपन्यास में तनवीर बेग से शादी करने के ~~xxxx~~ पश्चात् जुही का क्या हाल होता है उसका जो वर्णन है , इसमें भी मुस्लिम परिवेश के कुछ शब्दों का इस्तेमाल हुआ है । जुही अपनी दीदी चम्पा से सब हाल बताती है । यथा --" "उसी रात ही जुही मर गई थी , रे दीदी । रिनी खान का जन्म हुआ था उसी दिन । किंतु तनवीर वाज़ ए जेंटिलमैन , उसने मुझे पूरी आजादी दे दी थी । जहां जाऊं , जिसके साथ जाऊं , उसे कोई आपत्ति नहीं थी । मेरी जेठानी नहीद का मायका पाकिस्तान में था । मेरा विवाह हुआ , तो वह पाकिस्तान गई थी । जब लौटी तो व्यंग्य से हंसकर उसने पहला प्रश्न मुझसे यही पूछा था , " क्योंजी , तुम लड़की हो या लड़का ? तनवीर मियां के दोस्तों के मासूम जनाने चेहरे देख-देखकर ,

हमें डर लगता है कि कहीं तुम भी उन्हीं में से एक न हो । " ... " वही नहीद फिर मेरी दोस्त बन गई । कहती थी , " यहां सबका यही हाल है बहन , हमारे मियां को अफीम की लत है । उनकी लत तो तुम्हारे मियां की लत से भी खतरनाक है । धीरे-धीरे दिमाग भी ठप्प हुआ जा रह T है । इसीसे हम भी मौज करती हैं , क्यों दिल छोटा करती हो बहन , चलो हमारे साथ । " ३१

तनवीर समलैंगिकता की विकृति से ग्रस्त है । इस लत के कारण उसका पुंसत्व भी समाप्तप्राय हो गया है । उक्त विवरण में नहीद के कथनों में ऐसे कई शब्द हैं जिनसे ज्ञात होता है कि बोलनेवाली कोई मुसलमान औरत है ।

"गैंडा" उपन्यास की सुपर्णा एक सीधी-सादी घरेलू किस्म की स्त्री है । उसकी सहेली राज बड़ी घंट औरत है । वह धीरे-धीरे सुपर्णा के पति पर ही अधिकार जमा लेती है । सुपर्णा अपने पति को राज के ~~x~~ चंगुल से मुक्त करवाने के लिए एक मुसलमान मौलवी के पास जाती है । वहां सुपर्णा का मौलवी साहब से जो वार्तालाप होता है , उसमें मुस्लिम परिवेश की छांट मिलती है । यथा --

" हबीबा बेटी , तुम जरा बाहर जाकर अपनी अम्मी के पास बैठो । " .... " कुछ कीमती चीज खो गई है क्या ? " ... " हूं । किसी पर शक ? " ... " उसके बाप का नाम बता सकती हो ? " ... एक स्थूल कलेवर की पुस्तक खोलकर , उसके [सुपर्णा के] रख , मौलवी ने कहा , " आंखें बन्द कर इसमें अंगुली रखना , और जिस पर शक है , उसका चेहरा बन्द आंखों में बांधने की कोशिश करना । इन्शाअल्लाह , हम अभी हुलिया बता देंगे । " ..... " बेशक तुम्हारी बेशकीमती चीज चोरी गई है । .... चोर बाहर का नहीं है -- गोरा रंग , छरहरा बदन , बाल मर्दों की काट में छटे हैं । आंखें कंजी होंगी और हंसने पर बन्द हो जाती होंगी । चेहरा खूबसूरत होने पर भी कभी-कभी निहायत बदनुमा लगने लगता होगा । यह चोर पेशेवर चोर है । " ...

"मुझे मेरी चीज मिलेगी या नहीं ? " .... " मिलेगी , पर लेनेवाले को सज़ा दिए बिना यहां चीज नहीं मिलती , उसके लिए तुम्हें भी कुछ करना होगा । जब कर लोगी , तब लेनेवाली खुद बलबलाती तुम्हारे दरवाजे पर चीज डाल जाएगी । " ..... " एक चीज दूंगा , उसे ऐसी जगह में गाड़ कर रख देना , जहां वह उसे कम से कम एक बार लांघ ले ; पर कोई उससे पहले न लांघे , समझी ? अगर एक बार लांघ गई तो इंशा-अल्लाह , महीना बीतते-बीतते अपनी चीज पा लोगी । " .... " बेटी, तुम्हारी चीज मिल जाए तो अपनी इस छोटी बहन का भी ख्याल करना , " चलते-चलते मौलवी ने कहा था , " मैं आज तक न जाने कितनों के लिए खुदा से दुआ मांग , उनकी खोयी चीजें उन्हें लौटा चुका हूं , पर अपनी फाल अब तक नहीं खोल पाया । असल में नमक से ही नमक नहीं खाया जाता बेटी , अपने लिए कुछ मांग नहीं सकता । औलाद के नाम पर एक यही लड़की है । इसका रिश्ता तय हो चुका है । तोला-भर भी सोना कहीं से मिल जाये तो कपड़े तो खुदा जुटा ही देगा , इन्शा-अल्लाह तुम्हें तुम्हारी चीज़ मिलते देर नहीं लगेगी — चोर अभी घर में ही है । " " [32]

3.07 : ईसाई परिवेश :

शिवानीजी के उपन्यासों में कहीं-कहीं ईसाई परिवेश भी दृष्टिगत होता है । अल्मोड़ा के कुष्ठाश्रम की विदेशिनी आयरिश लेड़ी डा. पैट्रिक उर्फ रोजी करुणा की देवी और मां मरियम के अवतार-सी हैं । उनके आश्रम में पन्ना एक मृत बच्ची को जन्म देती है । ठीक उन्हीं दिनों में कुष्ठ रोग से पीड़ित पार्वती भी एक बच्ची को जन्म देती है । रोजी उस बच्ची की ढंग से परवरिश हो इस दृष्टि से उसे पन्ना को ले लेने के लिए प्रार्थना करती है । पार्वती जब बच्ची को जन्म देती है , उस समय के विवरण की भाषा में डा. पैट्रिक के ईसाई परिवेश की छाप स्पष्टतया लक्षित होती है ।

" नन्हे शरीर पर रात भर की गई ब्राण्डी की मालिश ने से

ही दैवी स्पन्दन इसे हिला-डुला गया था या उस दयालु से घुटने टेककर मांगी गयी भीख ही सार्थक हो गयी थी । पर दया की भीख तो इन्हीं प्राणों के लिए नहीं मांगी थी । बार-बार घुटने टेककर बैठी उस सन्त विदेशिनी के झुर्रीदार गालों पर झर-झरकर आंसू बहने लगते । " उसे क्षमा करो xxx प्रभु , शायद मैं उसे यहां न लाती तो ऐसा न होता, शायद वह सड़कों पर भटकती रहती तो ऐसा भयानक पाप नहीं करती । `xxx फोरगिव दैम लार्ड फार दे नो नोट व्हाट दे डू ? ` बुदबुदाती, वे कभी अवश पड़ी देह को निहारतीं , कभी छाती पर कान लगातीं । निष्प्रभ काली भवें और पुतलियां हिलने लगीं तो डाक्टर एक बार फिर प्रार्थना में डूब गयीं । " 33

"कृष्णकली" उपन्यास में ही रोज़ी का जो पत्र पन्ना पर लिखा गया है , उसमें भी ईसाई परिवेश की झलकी मिल जाती है । प्रस्तुत है पत्र का छोटा-सा अंश — " पर मैं अपना वायदा नहीं भूली हूं । मैंने तुमसे इसे केवल एक वर्ष पालने का अनुरोध किया था , xxx तुमने इसे पांच वर्ष की बना लिया है । मेरी एक विधवा बहन , इसी वर्ष नैनिताल आ गयी है । वहीं के कान्वेण्ट में नन हैं , इसीसे मुझे पूरी सुविधा है । ऐसे पवित्र वातावरण में निश्चय ही इसके जन्म का इतिहास धुलकर उजला निखर आयेगा । यदि तुम्हें इसे नैनिताल पहुंचाने की सुविधा न हो तो मेरी बहन इसे स्वयं आकर ले जायेगी । " 34

इसी उपन्यास में कली के सन्दर्भ में मदर रेवरण्ड का रोजी पर लिखा पत्र भी है । उस पत्र की भाषा में प्रयुक्त शब्द ईसाई-परिवेश की सृष्टि में पर्याप्त सक्षम-से प्रतीत होते हैं , जैसे — " यह तुम्हारी वार्ड न होती , तो मैंने इसे कबका हटा दिया होता । लड़की को बनने-संवरने में जितनी रुचि है , उसकी आधी भी यदि पढ़ने में होती, तो यह हमारे कान्वेण्ट का नाम उज्ज्वल करती । ऐसी प्रखर बुद्धि की छात्रा हमारे कान्वेण्ट में अरसे से नहीं आयी । पर इस नन्हें प्रखर मस्तिष्क की कुटिल चाल देखकर मैं सहसा विश्वास ही नहीं कर पाती कि यह भोली वर्जिन मेरी के-से चेहरेवाली बच्ची ऐसा कर कैसे सकती

है ? हमसे कहां यह त्रुटि हो गयी ? .... शायद उसी अद्भुत शक्ति से उसने जान लिया है कि उसके जन्म के पीछे कोई रहस्य अवश्य है । जब यह छोटी थी , तब बार-बार मुझ से पूछती थी —" मदर सबके डैडी स्कूल स्पोर्ट में आते हैं । हर बार मेरी ममी ही अकेली क्यों आती हैं ?" • 35

इसी उपन्यास विवियन आण्टी तथा लौरीन आण्टी के चरित्र भी आते हैं । कली इन दोनों के परिवारों में काफी समय रही है , अतः उनके परिवेश की अनेक चीजें भाषा द्वारा व्यक्त हुई हैं । "कालिन्दी", "चौदह फेरे " , "विषकन्या" प्रभृति उपन्यासों में भी अनेक स्थानों पर ईसाई-परिवेश का चित्रण हुआ है ।

3.08 : पारसी परिवेश :

शिवानीजी के कथा-साहित्य में पारसी-परिवेश नहींवत् आया है । वस्तुतः शिवानीजी जिन स्थानों पर रही हैं , वहां पारसी लोगों के साथ रहने के प्रसंग बहुत कम आये होंगे । बम्बई का परिवेश होता तो जरूर कुछ पारसी पात्र मिलते , परन्तु बम्बई का प्रत्यक्ष सन्दर्भ बहुत कम आ पाया है । केवल उनके "माणिक" उपन्यास में एक पारसी महिला का चरित्र आया है — दीना बाटलीवाला । परन्तु उसकी भाषा में वह पारसीवाला "टोन" नहीं मिलता है । वह या तो अंग्रेजी बोलती है या सुसंस्कृत परिनिष्ठित हिन्दी । पारसी लोगों की अंग्रेजी का भी एक विशिष्ट टोन होता है । वे लोग थोड़ा तुतलाकर बोलते हैं । "द" को "ड" और "त" को "ट" बोलते हैं । "डीकरा", "एवन" , "टमटमारे" , "बोलोनी" , "जाओनी" जैसे शब्द उनकी भाषा में प्रायः पाये जाते हैं । दीना बाटलीवाला की भाषा में इस पारसी टोन का अभाव-सा दिखता है । लेखिका ने दीना बाटली-वाला के रूप में उसका जिक्र किया है , अतः पाठक को इस बात का ज्ञान होता है कि वह पारसी है , अन्यथा उसकी भाषा से उसका पता चलाना मुश्किल है । इसे शिवानीजी की भाषा-अनुकृति की एक

सीमा या मर्यादा कहा जा सकता है ।

3.09 : बंगला-परिवेश :

प्रथम अध्याय में निर्दिष्ट किया जा चुका है कि शिवानीजी कई वर्षों तक शांतिनिकेतन में रही हैं । बाद में भी अनेक अवसरों पर कलकत्ते में रहना हुआ है । बंगाली समाज तथा परिवारों से उनकी घनिष्ठता भी रही है । अतः उनके उपन्यासों में बंगला-परिवेश का समावेश स्वाभाविक रूप से हो गया है । उनके अधिकांश उपन्यासों में यह परिवेश अपनी समग्रता के साथ उकेरित हुआ है । पहाड़ी परिवेश (कुमाऊं प्रदेश) तथा बंगला परिवेश के चित्रण में शिवानीजी को सर्वाधिक सफलता प्राप्त हुई है ।

"कृष्णकली" , "कालिन्दी" , " चौदहफेरे" , " जोकर" , "तर्पण" , "विषकन्या" , " कैंजा" , "माणिक" , "मायापुरी" आदि लगभग उनके सभी उपन्यासों में यह परिवेश भलीभांति चित्रित हुआ है । यहां तक कि बंगला कविता के उद्धरण भी अनेक स्थानों पर आये हैं । "कृष्णकली" उपन्यास में गुरुदेव रवीन्द्रनाथ ठाकुर का एक गीत उद्धृत हुआ है । इसी गीत पर से वाणी सेन ने पन्ना की बेटी का नाम "कृष्णकली" रखा था , पर प्यार से सब उसे "कली" कहते थे । यथा --

कृष्णकली आमी तारेई बोली
कालो तारे बोले गायेर लोक --
एमनि कोरे कालो काजल मेघ
ज्येष्ठ मासे आसे ईशान कोने --
एमनि कोरे कालो कोमल छाया
आषाढ़ मासे नामे तमाल बने
एमनि कोरे श्रावण रजनीते --
हठात् खुशी धनिये आसे चिते --
[illegible] कालो ?

ता से यतई कालो होक
देखेछि तार कालो हरिण चोख । [36]

अर्थात् क्या ऐसे ही काले काजल मेघ , जेठ के महीने के साथ ईशान कोण कोण पर नहीं घिर आते ? क्या ऐसे ही आषाढ़ में काली कोमल छाया तमाल वन पर नहीं उतर आती ? क्या ऐसे ही काली श्रावणी रजनी के बीच हृदय आनंद से पुलकित नहीं हो उठता ? काली ? कितनी ही काली क्यों न हो ? मैंने उसकी हिरणी-सी काली आँखें देख ली हैं । [37]

"कृष्णकली" उपन्यास की "कुन्नी" वैसे तो पहाड़ी है , परंतु उसकी परवरिश कलकत्ते में बंगला-समाज के बीच हुई है । इस कुन्नी की सगाई प्रवीर से हुई है । प्रवीर को कली मन ही मन चाहती थी । प्रवीर की बहन माया कुन्नी के विषय में, उसकी प्रशंसा में जो शब्द , कहती है उसके सं दर्भ में जो लेखकीय टिप्पणी आई है वह बंगला परिवेश को उजागर करने में सक्षम है — " बात माया ने पते की कही थी । लड़की में कहीं कोई दोष नहीं था । भरे-भरे अंगों का सौष्ठव उठते - बैठते गदराते यौवन की किरणें-सी छोड़ता था । गाने को वह रवीन्द्र-संगीत ही गाती थी , पर छठी-दष्टौन और घुड़चढ़ी के अनमोल गीतों से दिशाएं गुंजाती वह अपनी स्वस्थ , पुष्ट हथेली की चोट से ढोलक को दमामे-सा गूंजा देती , तो पर्वतीय समाज की अधिकांश पार्श्व-गायिकाएं धराशायी हो जातीं । .... ऐसे मधुर कण्ठ की स्वामिनी , जो अतुलप्रसाद और रवीन्द्रनाथ के सुमधुर संगीत का मधु घोलकर बंग-वासियों को भी सम्मोहित कर लेती है । .... रवीन्द्र-साहित्य वासर में कितनी तालियां बजी थीं उसके गाने पर । जब यहां राजेश्वरी दत्ता , कनिका देवी और सुचित्रा मित्रा जैसी प्रसिद्ध रवीन्द्र-संगीत की सुगायिकाएं भी उसके पहले गाना गा चुकी थीं । " [38]

इसी उपन्यास में अनेक स्थानों पर बंगला-पात्रों के संदर्भ में पूरे-के-पूरे बंगला-वाक्य आये हैं । जैसे — "एई जे गौजेन , देखो केमोन राजा जामाई पेयेछी " (यह देखो गजेन्द्र मुझे कैसा राजा

दामाद मिला है) ;[39] "आहा बूक जुड़िये गैली मां लोक्खी " (आहा, छाती ठण्डी हो गयी मां लक्ष्मी)[40] ; " ओहे पाण्डे , एक टु मिष्टी दाओ देखी । " (अरे पाण्डे , ज़रा मिठाई बढ़ाना इधर)[41] ; "की है जामाई बाबू — बांगला शीखते पारले ना ? " (क्यों हे जमाई बाबू, बंगला नहीं सीख सके क्या ?)[42] ।

इस प्रकार के वाक्य-प्रयोगों से बंगला-परिवेश का चित्रण पूर्णरूपेण हो सका है । ऐसे तो अनेक वाक्य तथा बंगला शब्द उनके अनेक उपन्यासों में प्रयुक्त हुए हैं । व्यक्तियों के , मिठाइयों के , बंगला परंपराओं के ऐसे कई सन्दर्भ आते हैं जिनसे यह ज्ञातव्य हुए बिना नहीं रहता कि शिवानीजी बंगला-परिवेश का चित्रण करने में पूर्णतया सफल रही हैं ।

3.10 : निष्कर्ष :

समग्र अध्याय का समाकलन करने पर हम निम्नलिखित निष्पत्तियों तक पहुंच सकते हैं :—

(1) परिवेश-विषयक विभावना में देश एवं काल की अवधारणाएं निहित हैं । निश्चित स्थान एवं निश्चित समय की भाषा का एक विशेष स्वरूप हुआ करता है । भाषा नित्यप्रति बदलती है और अलग-अलग प्रदेशों की भाषा में असंदिग्धतया एक निश्चित अंतर पाया जाता है ।

(2) परिवेश के निर्माण में भाषा का योगदान निश्चयतया अपरिहार्य है । उपन्यास में यथार्थता लाने के हेतु यथार्थ-परिवेश की सृष्टि परम आवश्यक है और यह भाषा के द्वारा ही संभव है ।

(3) नगरीय एवं ग्रामीण परिवेश की भाषा में भी गुणात्मक अंतर पाया जाता है । नगरीय-परिवेश में भी सुशिक्षित उच्चवर्ग एवं [illegible] मध्यवर्ग की भाषा का एक स्तर होता है और निम्नवर्ग तथा स्लम-निवासी लोगों की भाषा का दूसरा । ग्रामीण परिवेश में भी उच्चवर्ग की भाषा तथा जन-बनिहार की भाषा में अंतर परिलक्षित किया जा सकता है । ग्रामीण भाषा में कोलोक्युअल शब्दों

तथा कहावत-मुहावरों का बाहुल्य लक्षित किया जा सकता है ।

§4§ शिवानीजी के उपन्यासों में ग्रामीण , पहाड़ी , विशेषतः कुमाऊं प्रदेश का पर्वतीय परिवेश , नगरीय , हिन्दू , मुस्लिम , ईसाई , बंगला आदि परिवेश की भाषाओं की नाना छटाएं दृष्टिगत होती हैं ।

§5§ नगरीय परिवेश का सुशिक्षित वर्ग , कुमाऊं प्रदेश , हिन्दू-परिवेश तथा बंगला परिवेश प्रभृति की भाषा के आलेखन में शिवानीजी को सविशेष सफलता हासिल है । मुस्लिम परिवेश का आकलन कम है , पारसी परिवेश का नहींवत् ।

======== XXXXXXX =========

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ द्रष्टव्य : क्षितिज §गुज. पत्रिका § सं. डा. सुरेश जोशी : नवल-कथा विशेषांक : डा. उमाशंकर जोशी का "मैला आंचल" विषयक लेख : फरवरी : 1963 : पृ. 584 ।

§2§ द्रष्टव्य : भाषाविज्ञान : डा. भोलानाथ तिवारी : पृ. 356-370 ।

§3§ काव्य के रूप : बाबू गुलाबराय : पृ. 169 ।

§4§ संदर्भ-संख्या-1 के अनुसार : पृ. 582-583 ।

§5§ "मोडर्न क्रीटिसिजम एण्ड थियरी : एडिटेड बाय डेविड लोज ×××× आर्टिकल — " फ्रोम द प्रिहिस्टरी ऑफ नोवेलेस्टिक डिसकोर्स " : आथर्ड बाय : मिखाईल बोखितन : पृ. 131 ।

§6§ भैरवी : पृ. 115 ।

§7§ वही : पृ. 120 ।

§8§ चौदह फेरे : पृ. 154 ।

§9§ कृष्णकली : पृ. 148 ।

§10§ कालिन्दी : पृ. 146-147 ।

§11§ कृष्णकली : पृ. 163 ।

§12§ भैरवी : पृ. 87-88 ।

§13§ वही : पृ. 90 ।

§14§ माणिक : पृ. 14-15-16 ।

§15§ चौदह फेरे : पृ. 10 ।

§16§ कालिन्दी : पृ. 112-113-114 ।

§17§ वही : पृ. 112 ।

§18§ वही : पृ. 114 ।

§19§ वही : पृ. क्रमशः 112, 115 , 148 ।

§20§ द्रष्टव्य : वही : पृ. ×××× 144 ।

§21§ द्रष्टव्य : वही : पृ. 143 ।

§22§ कालिन्दी : पृ. 81-82 ।

§23§ वही : पृ. 193 । §24§ वही : पृ. 202 ।

§25§ वही : पृ. 151-152 । §26§ वही : पृ. 18-19 ।

§27§ श्मशान चम्पा : पृ. 8-9 ।

§28§ कृष्णकली : पृ. 228 । §29§ वही : पृ. 9-11 ।

§30§ श्मशान चम्पा : पृ. 12 । §31§ वही : पृ. 97-98 ।

§32§ गेण्डा : पृ. 28-29-30 ।

§33§ कृष्णकली : पृ. 12 ।

§34§ वही : पृ. 39 । §35§ वही : पृ. 55 ।

§36§ वही : पृ. 37 । §37§ वही : पृ. 37 ।

§38§ वही : पृ. 136 ।

§39§ वही : पृ. 160 ।

§40§ वही : पृ. 161 ।

§41§ वही : पृ. 161 ।

§42§ वही : पृ. 161 ।

====== xxxxxx =======